UNIVERSAL LIBRARY

OU_186561

UNIVERSAL LIBRARY

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग २ | जूलाई १९३२ | अंक ३

'मूल गोसाईंचरित' की ऐतिहासिकता पर कुछ विचार

[लेखक—श्रीयुत माताप्रसाद गुप्त, एम्० ए०]

'मूल गोसाईंचरित' में जिन प्रमुख साहित्यिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों के संबंध में उल्लेख आए हैं वे इस प्रकार हैं :—

साहित्यिक—हितहरिवंश, सूरदास, गोकुलनाथ, मीराबाई, रसखान, केशवदास, नाभादास, नंददास, मलूकदास तथा गंग।

ऐतिहासिक—उदयसिंह, दिल्लीपति, टोडर ज़मीनदार, रहीम, जहाँगीर, तथा बीरबल।

प्रस्तुत निबंध में साहित्यिक व्यक्तियों में से अंतिम दो तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों में अंतिम, अर्थात् मलूकदास, गंग तथा बीरबल को छोड़ कर सब पर विचार किया गया है।

दोहा—देव मुरारी भेंट मिलि, सहित मलूका दास।
पहुँचे काशी में ऋषय, किये अखंड निवास॥ ८३॥

और यह घटना उक्त ग्रंथ के अनुसार १६५५-५६ वि० की ज्ञात होती है। बालक विनायकराव जी ने देवमुरारी जी को मलूकदास का गुरु माना है।[1] यद्यपि यह उक्त उद्धरण से स्पष्ट नहीं होता; किंतु साहित्य के इतिहासों से इस विषय पर प्रकाश नहीं पड़ता। मलूकदास का जन्म १६३१ वि० में हुआ था और इस समय उन की अवस्था २४-२५ वर्ष की रही होगी, अतएव, यदि वे देवमुरारी के शिष्य रहे हों तभी गोस्वामी जी ऐसे १०० वर्ष के वृद्ध महात्मा का उन से भी भेंट कर लेना अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता है, किंतु इस विषय पर दृढ़तापूर्वक कुछ न कहे जा सकने के कारण प्रस्तुत निबंध में इन पर विचार नहीं किया गया है।

इसी प्रकार, गंग की मृत्यु १६६९ वि० में होने का उल्लेख 'मूल गोसाईं-चरित' (दो० ९१, ९२) में होता है और उस में यह भी लिखा है कि गोस्वामी जी को दुर्वचन कहने के कारण मार्ग में उसे एक हाथी ने मार डाला। किंतु गंग की मृत्यु का निश्चित समय न ज्ञात हो सकने के कारण इस विषय में ठीक कहा नहीं जा सकता; कम से कम गोस्वामी जी को दुर्वचन कहने के कारण उस की ऐसी दुर्गति हुई यह भी कहीं अन्यत्र नहीं आया है।

बीरबल के विषय में 'मूल गोसाईंचरित' में इस भाँति उल्लेख आया है :—

बिरबल की चरचा चली, जो पटु बाग बिलास।
बुद्धि पाइ नहिं हरि भजे, मुनि किय क्षोभ प्रकाश॥ ९८॥

यह घटना १६७० की समाप्ति पर जहाँगीर के आने पर हुई है और बीरबल १५८६ ई० (सं० १६४२ वि०) को[2] ही वीरगति को प्राप्त हो चुके

---

[1] 'श्रीमद्गोस्वामि चरितम्', पृ० ३६।

[2] 'हिंदुस्तानी,' जनवरी १९३१, पृ० १५।

थे, फिर भी उपर्युक्त उल्लेख में काल का आशय स्पष्ट न हो सकने के कारण विचार नहीं किया जा सकता।

यहाँ पर विचार करने में पुस्तक के उल्लेखों का क्रम रक्खा गया है।

हितहरिवंश

वेणीमाधवदास हितहरिवंश जी के विषय में इस प्रकार उल्लेख करते हैं—

वृंदाबन ते हरिवंस हितू।
प्रियदास नवल निज सिष्य भृतू॥
पठये तिन आइ जोहार किए।
गुरुदत्त सुपोथि सप्रेम दिए॥
जमुनाष्टक राधा सुधा निधि जू।
अरु राधिका तंत्र महा विधि जू॥
अरु पाति दई हित हाथ लिखी।
सोरह सै नव जन्माष्टमि की॥
तेहि माहिं लिखी बिनती बहुरी।
सोइ बात मुखागर सो कहुरी॥
रजनी महारासि की आवत जू।
चित मोर सदय ललचावत जू॥
रसिकै रस मों तनु त्याग चहौं।
मोहिं आशिष देइय कुंज लहौं॥

सोरठा—सुनि बिनती मुनिनाथ, एवमस्तु इति भाषेऊ।
तनु तजि भए सनाथ, नित्य निकुंज प्रवेस करि॥ ८॥

अतः यह स्पष्ट है कि 'मूल गोसाईंचरित' के अनुसार हितहरिवंश जी ने

(क) १६०९ वि० के पूर्व ही 'यमुनाष्टक', 'राधासुधानिधि', तथा 'राधिकातंत्र' की रचना समाप्त की थी। और,

(ख) उन्हों ने १६०९ वि० की महारास रजनी अर्थात् कार्तिकी पूर्णिमा को शरीर त्याग किया।

ग्रंथों के विषय में ठीक तिथियों का अनुसंधान कदाचित् अभी तक नहीं हुआ है, किंतु 'हित जी का रचनाकाल १६०० से १६४० वि० तक माना जाता है।'[१]

हित जी की मृत्यु के निश्चित संवत् के विषय में संभव है कोई मत-भेद हो किंतु इतना निश्चित है कि उन का देहांत १६०९ वि० में नहीं हुआ क्योंकि 'ओरछा नरेश महाराज मधुकर साह के राजगुरु श्री हरिराम व्यास जी सं० १६२२ के लगभग आप के शिष्य हुए थे।'[२]

सूरदास तथा गोकुलनाथ

वेणीमाधवदास लिखते हैं—

दोहा—सोरह सै सोरह लगै, कामद गिरि ढिग वास।
सुभ एकांत प्रदेस महँ, आए सूर सु दास॥ २९॥
पठये गोकुलनाथ जी, कृष्ण रंग में बोरि।
दृग फेरत चित चातुरी, लीन गोसाईं छोरि॥ ३०॥

कवि सूर दिखायउ सागर को।
सुचि प्रेम कथा नट नागर को॥
पद द्वय पुनि गाय सुनाय रहै।
पद पंकज पै सिर नाय रहै॥
अस आसिस देइय स्याम टरै।
यहि कीरति मोरि दिगंत चरै॥
सुनि कोमल बैन सुदादि दिए।
पद-पोथि उठाइ लगाइ हिए॥
कहै स्याम सदा रस चाखत हैं।
रुचि सेवक की हरि राखत हैं॥

---

[१] 'हिंदी साहित्य का इतिहास,' पृ० १७७।

[२] वही, पृ० १७६।

तनिको नहिं संशय है यहि माँ।
श्रुति शेष बखानत हैं महिमा॥
दिन सात रहै सतसंग पगै।
पद कंज गहै जब जान लगै॥
गहि बाँह गोसाईं प्रबोध किये।
पुनि गोकुलनाथ को पत्र दिये॥
लै पाति गए जब सूर कबी।
उर में पधराय कै स्याम छबी॥
दो०—तब आयो मेवाड़ ते विप्र नाम सुखपाल··· ॥ ३१ ॥

अतएव, 'मूल गोसाईंचरित' के अनुसार सूरदास गोस्वामी जी के पास १६१६ वि० में आए। अभी तक सूरदास की मृत्यु की तिथि निश्चित नहीं हो सकी है, किंतु अनुमान यही किया जाता है कि उन का देहांत १६१७-२० वि० के बीच या कुछ ही पीछे हुआ होगा। फिर भी उन के समय का जो अनुमान विद्वान् करते आए हैं उस के अनुसार १६१६ वि० में सूरदास की अवस्था लगभग ७६ वर्ष की रही होगी और ऊपर का विवरण ऐसे वृद्ध महात्मा के लिये कम प्रामाणिक जँचता है।

संभव है सूरदास जी से गोसाईं जी से भेंट हुई हो, किंतु यह कदापि नहीं माना जा सकता कि १६१६ वि० में उन्हें 'गोकुलनाथ जी ने कृष्ण रंग में डुबो कर भेजा' होगा। यहीं तक नहीं गोस्वामी जी ने सूरदास के हाथ उन के नाम एक पत्र भी दिया। गोकुलनाथ का समय १६०८ से १६९८ वि० माना जाता है। अतएव, यह नितांत असंभव प्रतीत होता है कि उन्हों ने सूरदास को कृष्ण रंग में डुबो कर गोस्वामी जी के पास भेजा होगा और गोस्वामी जी ने भी उन के नाम पत्र दिया होगा।

मीराबाई और उन का पत्र

वेणीमाधवदास लिखते हैं:—

लै पाति गए जब सूर कबी।
उर में पधराय कै स्याम छबी॥

दोहा—तब आयो मेवाड़ ते, विप्र नाम सुख पाल।
मीराबाई पत्रिका, लायो प्रेम प्रवाल॥ ३१॥
पढ़ि पाती उत्तर लिखे, गीत कवित्त बनाय।
सब तजि हरि भजिबो भलो, कहि दिय विप्र पठाय॥ ३२॥

जिस से यह ज्ञात होता है कि मीराबाई ने १६१६ वि० में गोस्वामी जी को पत्र भेजा था। इस पत्र के विषय में विचार करने के लिये मीरा के दोनों कुलों के इतिहास से कुछ परिचित होना पड़ेगा। इसलिए पहिले दोनों राजवंशों का उपयोगी विस्तार नीचे दिया जाता है।

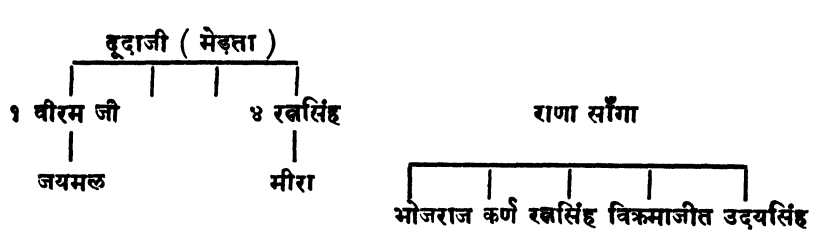

मीरा के पितृकुल तथा श्वसुरकुल का संबंध १५७३ वि० में[1] उन का कुँवर भोजराज के साथ विवाह होने पर स्थापित हुआ। भोजराज की मृत्यु १५८३ वि० के पूर्व ही हो चुकी थी। १५८५ वि० में राणा सांगा की भी मृत्यु हो गई। उन की मृत्यु के पीछे दो वर्षों में दो राजकुमार कर्ण तथा रत्नसिंह गद्दी पर बैठे और फिर १५८७ वि० में विक्रमाजीत गद्दी पर बैठे और १५९४ तक उस पर स्थित रहे, जब बनबीर ने उन से गद्दी छीन ली। विक्रमाजीत ही वे राणा थे जो मीरा को कष्ट देते थे अतएव, यदि मीरा ने गोस्वामी जी को अपने पीड़ित होने का कोई पत्र लिखा होगा तो वह १५८७ से १५९४ के बीच होगा, न कि उस से २२ वर्ष पीछे। राजस्थान के इतिहासकार तो १६०३ ही

---

[1] 'महिलामृदुवाणी,' पृ० ५९ से 'हिंदुस्तानी' जनवरी ३१ के 'मीराँबाई' लेख में उद्धृत।

में मीरा की मृत्यु भी मानते हैं। इस दशा में मीराबाई ने १६१६ में गोस्वामी जी को पत्र लिखा होगा यह असंभव ज्ञात होता है।

रसखान

वेणीमाधवदास लिखते हैं कि जब 'मानस' १६३३ वि० के मार्गशीर्ष में अयोध्या में समाप्त हुआ तो सब से पहिले उसे वहीं मिथिला के रूपारुण स्वामी ने सुना[1], उन के पीछे संडीला-निवासी[2]।

स्वामि नंद सुलाल को सिष्य पुनी।
तिसु नाम दयालु सुदास गुनी॥
लिखि कै स्वइ पोथी स्वठाम गयो।
गुरु के ढिग जाय सुनाय दयो॥
यमुना तट पै त्रय वत्सर लों।
रस खानहिं जाइ सुनावत भो॥ ६६॥

जिस से यह स्पष्ट ज्ञात होता है १६३४-३७ में रसखान ने संडीले के दयालदास से यमुनातट पर 'मानस' सुना।

'२५२ वैष्णवन की वार्ता' में २१८ वीं वार्ता का विषय है—

"गोसाईं जी के सेवक रसखान पठान दिल्ली में रहेते हते तिन की वार्ता।" उक्त वार्ता में यह भी लिखा है कि ये एक साहूकार के लड़के पर बुरी तरह से मुग्ध थे। एक बार चार वैष्णव जा रहे थे तो आपस में उन्हों ने यह चर्चा की कि यदि कोई प्रेम करे तो रसखान की भाँति। रसखान का ध्यान जब उन की ओर आकर्षित हुआ तो उन्हों ने श्रीनाथ जी का चित्र दिखाया जिस से रसखान का मन उस लड़के से हट कर श्रीनाथ जी में लग गया। वे अब वृन्दाबन आए और गोसाईं विट्ठलनाथ जी के सेवक हुए। 'तब ते रसखान ने अनेक कीर्तन और कवित्त, और दोहा बहोत प्रकार के बनाए।'

रसखान ने 'प्रेमबाटिका' की रचना १६७१ में की। 'विट्ठलेश जी का

---

[1] 'मूल गोसाईंचरित', दोहा ६६।

[2] वही, दो० २८।

मरण-काल १६४३ है सो इन का १६४० के लगभग उन का शिष्य होना जान पड़ता है। अतः इन का जन्म-काल १६१५ के लगभग समझते हैं।'[1] इस दशा में रसखान ने १६३४-३७ में 'मानस' सुना होगा—सो भी ३ वर्ष तक लगातार—विश्वासयोग्य नहीं ज्ञात होता। उस समय वे कदाचित् साहूकार के लड़के की कथा पर 'मानस' की अपेक्षा अधिक ध्यान देते रहे होंगे।

केशवदास तथा रामचंद्रिका

वेणीमाधवदास लिखते हैं कि मीन की सनीचरी के उतरते ही (मीन की सनीचरी का अंत १६४२ के ज्येष्ठ में हुआ) काशीपुरी में मरी का प्रकोप हुआ किंतु उसे गोसाईं जी ने भगवान से विनय कर के भगा दिया।[2] मरी के पीछे ही

कवि केशवदास बड़े रसिया।
घनश्याम सुकुल नभ के बसिया॥
कवि जानि के दर्शन हेतु गए।
रहि बाहर सूचन भेजि दिए॥
सुनि कै जु गोसाईं कहै इतनो।
कवि प्राकृत केशव आवन दो॥
फिरि गे झट केशव सो सुनि कै।
निज तुच्छता आपुहि ते गुनि कै॥
जब सेवक टेरेउ गे कहि कै।
हौं भेटिहौं कालि विनय गहि कै॥
घनश्याम रहै घासीराम रहै।
बलभद्र रहै बिसराम लहै॥
रचि राम सुचंद्रिका रातहि में।
जुरै केशव जू असि आटिहि में॥ ५८॥

---

[1] 'मिश्रबंधुविनोद,' पृ० ३३८ [सं० १९८३]।

[2] 'मूल गोसाईंचरित,' दो० ५७।

जिस से यह स्पष्ट है कि 'मूल गोसाईंचरित' के अनुसार 'रामचंद्रिका' की रचना १६४३ के लगभग की है, किंतु यह नितांत अशुद्ध है क्योंकि उक्त ग्रंथ के आदि में ही स्पष्ट शब्दों में लिखा हुआ है कि उस की रचना १६५८ में हुई। 'इस ग्रंथ को केशवदास ने सं० १६५८ वि० कार्तिक सुदी १२ बुधवार को समाप्त किया। इसे इंद्रजोत सिंह ने बनवाया था।'[1] अतएव, 'मूल गोसाईं-चरित' का उल्लेख कितना भ्रमपूर्ण है!

इसी प्रकार, वेणीमाधवदास आगे चल कर सं० १६५३-५४ के लगभग केशवदास के प्रेत का उल्लेख करते हैं जिस से यह स्पष्ट ही है कि उन के अनुसार केशव का देहांत १६५३ के पूर्व हो चुका होगा। वे लिखते हैं—

सोरठा—उड़छै केशवदास, प्रेत हते घेरे मुनिहिं।
उघरे बिनहिं प्रयास, चढ़ि विमान स्वर्गहिं गए॥ १९॥

किंतु १६५३-५४ तक तो 'रामचंद्रिका' की भी रचना न हो पाई थी और इस में संदेह नहीं कि यदि उस समय या उस से पूर्व ही केशवदास की मृत्यु हो गई होती तो हिंदी साहित्य को एक महाकवि और आचार्य खोना पड़ता। यह अवश्य है कि हमें केशवदास की मृत्यु की निश्चित तिथि का यथार्थ ज्ञान नहीं है। फिर भी, वे १६५३-५४ के कम से कम १५ वर्ष पीछे तक जीवित रहे यह निस्संदेह है, क्योंकि १६५८ में उन्हों ने 'कविप्रिया' तथा 'रामचंद्रिका', १६६४ में 'वीरसिंहदेवचरित', १६६७ में 'विज्ञानगीता' और १६६९ में 'जहाँगीरजसचंद्रिका' नामक ग्रंथों की समाप्ति की। अतएव, वेणीमाधवदास का यह प्रेत विषयक उल्लेख भी नितांत भ्रमपूर्ण है।

नाभादास

वेणीमाधवदास के अनुसार १६४९ के मार्गशीर्ष में गोसाईं जी वृंदाबन पहुँचे और वहाँ नाभा जी से भेंट हुई। उस के पश्चात् मदनमोहन के दर्शन को उन के साथ गए—

---

[1] 'हिंदीनवरत्न,' पृ० ४६६।

दोहा—विप्र संत नाभा सहित हरि दर्शन के हेत।
गए गोसाईं मुदित मन मोहन मदन निकेत॥ ७३॥
राम उपासक जानि प्रभु तुरत धरे धनु बान।
दर्शन दिए सनाथ किय भक्त बछल भगवान॥ ७४॥

यहाँ पर नाभा जी को 'विप्र संत' कहा गया है, किंतु नाभा जी डोम कहे जाते हैं। कुछ लोग डोम का आशय क्षत्री तथा कुछ मारवाड़ आदि की एक गायक जाति से लेते हैं किंतु उन्हें 'विप्र संत' कदाचित् अन्य कोई नहीं कहता। इस के अतिरिक्त, ऊपर जिस कथा का वर्णन है '२५२ वैष्णवन की वार्ता' में नंददास जी के साथ श्रीनाथ जी का दर्शन करते हुए उसी कथा का उल्लेख हुआ है। अतएव 'मूल गोसाईंचरित' के इस विवरण पर भी सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता।

नंददास

वेणीमाधवदास ने १६४९-५० में ही वृंदावन में नंददास से भी भेंट कराई है।[1] किंतु '२५२ वार्ता' में नंददास की वार्ता में यह भी लिखा है कि वे गोस्वामी जी को गोसाईं विट्ठलनाथ जी के पास लिवा गए थे। गोसाईं जी का देहांत १६४३ में हुआ अतएव, नंददास से वृंदाबन में इस से भी पहले भेंट हुई होगी न कि १६४९-५० में। अतएव, 'मूल गोसाईंचरित' का यह उल्लेख भी कदाचित् शुद्ध नहीं जँचता है।

यहाँ तक हम ने 'मूल गोसाईंचरित' के साहित्यिक व्यक्तियों तथा उन से संबंध रखने वाली घटनाओं के उल्लेखों पर विचार किया है आगे हम उस में आने वाले ऐतिहासिक व्यक्तियों तथा उन से संबंध रखने वाली घटनाओं पर विचार करेंगे।

उदयसिंह और शाही सभाओं में उन का सम्मान

वेणीमाधवदास लिखते हैं—

---

[1] 'मूल गोसाईंचरित,' दो० ७५।

दोहा—जेहि दिन साहि सभान में उदय लह्यो सन्मान।
तेहि दिन पहुँचे अवध में श्री गोसाईं भगवान॥ ३७॥
युग वत्सर बीते न वृत्ति डग्यो।
इकतीस को संवत आन लग्यो॥ ३८॥

जिस से यह स्पष्ट लक्षित होता है कि उदयसिंह को १६२९ वि० में शाही सभाओं में सम्मान मिला होगा। किंतु इतिहास-लेखकों का मत है कि सम्मान न उदयसिंह को मिला और न प्रतापसिंह को ही; वह अमरसिंह तथा कर्ण को मिला और वह भी जहाँगीर द्वारा प्रतापसिंह की मृत्यु के अनंतर। इस के अतिरिक्त, २३ फ़रवरी १५६८ ई० को अकबर ने चित्तौर गढ़ पर विजय पाई और इस के चार ही वर्ष पीछे[1] अर्थात् १६२८ वि० में उदयसिंह की मृत्यु हो गई तब उन्हें १६२९ में शाही सभाओं में किस भाँति सम्मान मिला होगा यह समझना कठिन है।

दिल्लीपति और दिल्ली में उस से भेंट

वेणीमाधवदास ने १६५३-५४ के लगभग गोस्वामी को दिल्लीपति से भेंट लिखी है। बादशाह के बुलाने पर गोस्वामी जी दिल्ली के लिए चल पड़े। मार्ग में केशवदास का वह प्रेत मिला, जिस का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। गोस्वामी जी ने इसी बीच एक स्त्री को 'मानस' के नवाह्निक पाठ से पुरुष बना दिया और दिल्ली पहुँचे।[2] यहाँ पर भी बड़ा कौतुक हुआ—

दोहा—दिल्लीपति बिनती करी, दिखरावहु करमात।
मुकरि गये बंदी किए, कीन्हें कपि उत्पात॥ ८०॥
बेगम को पट फारेऊ नगन भई सब बाम।
हाहाकार महल मच्यो पटको नृपहिं धड़ाम॥ ८१॥
मुनिहिं मुक्त ततछन किए क्षमापराध कराय।
बिदा कीन्ह सन्मान युत पीनस पै पधराय॥८२॥

---

[1] स्मिथ, 'अकबर दी ग्रेट मोगल,' पृ० ८८ तथा ९२।

[2] 'मूल गोसाईंचरित,' दो० ७८,७९।

इस प्रसंग में दिल्लीपति का आशय बालक विनायकराव जी ने जहाँगीर से लिया है और बा० श्यामसुंदर दास ने भी वही लिया है।[1] किंतु यह इतिहास की एक बहुत ही साधारण बात है कि जहाँगीर १६६२ वि० में गद्दी पर बैठा और १६५३-५४ वि० में अकबर दिल्लीश्वर था। अकबर के समय का पूरा और प्रामाणिक इतिहास हमें उपलब्ध है किंतु कदाचित् कहीं भी उस में इस घटना ही नहीं ऐसी किसी घटना का संकेत भी नहीं मिलता। अतः यहाँ भी 'मूल गोसाईंचरित' का उल्लेख भ्रमपूर्ण ज्ञात होता है।

टोडर के उत्तराधिकारी

वेणीमाधवदास लिखते हैं—

दोहा—सोरह सै उनहत्तरो, माधव सित तिथि थीर।
पूरन आयू पाइ कै, टोडर तजै सरीर॥ ८७॥

पाँच मास बीते परे, तेरस सुदी कुआर।
युग सुत टोडर बीच मुनि, बाँट दिये घर बार॥ ८९॥

जिस से यह स्पष्ट आशय निकलता है कि टोडर के घरबार का बँटवारा उन के दो लड़कों के बीच हुआ।

वह पंचनामा जिस में बँटवारा सविस्तर अंकित किया गया था सौभाग्यवश अब तक है, किंतु उस में दोनों पक्षों का नाम इस प्रकार आया है—

"आनंदराम बिन टोडर, बिन देवराय, व
कँधई बिन रामभद्र बिन टोडर मज़कूर—"

---

[1] 'गोस्वामी तुलसीदास,' पृ० १३५-३९।

अर्थात्

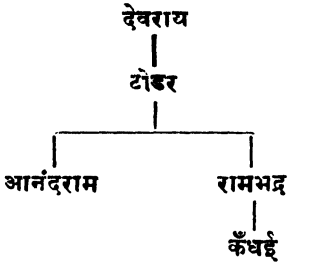

इस प्रकार यह नितांत स्पष्ट है कि बँटवारा आनंदराम और कँधई के बीच हुआ जो भाई भाई नहीं वरन् चचा भतीजे थे। आनंदराम टोडर का पुत्र अवश्य था किंतु कँधई टोडर का पौत्र था। अतएव, 'मूल गोसाईंचरित' का यह उल्लेख भी नितांत भ्रमपूर्ण है।

रहीम तथा उन के 'बरवै' की रचना

सं० १६६९ की घटनाओं का उल्लेख करते हुए वेणीमाधवदास लिखते हैं—

दोहा—कवि रहीम बरवै रचै, पठये मुनिवर पास।
लखि तेइ सुंदर छंद में, रचना किएउ प्रकास॥ ९३॥

जिस से यह ज्ञात होता है कि रहीम ने 'बरवै' १६६९ में रच कर गोसाईं जी के पास भेजा।

रहीम ने बरवै छंद में एक 'नायिकाभेद' की तथा कुछ स्फुट रचना की है किंतु अभी तक इन रचनाओं का समय नहीं निर्धारित हो सका है। फिर भी यह अनुमान किया जा सकता है कि इन की रचना १६५१-५४ के लगभग की गई होगी।

रहीम के जीवन का सब से महत्त्वपूर्ण संवत् १६५७ है। १६५७ में अहमदनगर के पतन के साथ ही रहीम के भाग्यचक्र ने पलटा खाया। यद्यपि विजय अधिकांश में रहीम के प्रयत्नों से हुई कही जाती है और यह भी सुना जाता है कि उन्हों ने इस के उपलक्ष में ७५ लाख रुपये लुटा डाले किंतु यश राजकुमार मुराद को मिला। इन्हीं दिनों उन की स्त्री का भी देहांत हो

गया। जहाँगीर के राजकाल में उन्हें और भी दुख रहा। आँखों के सामने ही दो जवान पुत्रों ने परमधाम की यात्रा की। अपनी पुत्री से शाहजहाँ का विवाह करने के कारण उत्तराधिकार के झगड़ों में स्वभावतः भाग लेना पड़ा और फलतः नूरजहाँ की क्रूरनीति का लक्ष्य बनना ही पड़ा। जहाँगीर ने भी इतने योग्य व्यक्ति का उचित सम्मान न किया और इसलिए भी रहीम के जीवन के अंतिम ३० वर्ष दुर्गति के थे और अंत में १६८६ वि० में उन्हों ने शरीर-त्याग किया।

ऐसी दशा में यह असंभव ज्ञात होता है कि १६५७ से ले कर १६८६ के बीच किसी समय 'बरवै' की रचना हुई होगी—बरवै की सरसता और भी यही पुष्ट करती है—अतएव, 'मूल गोसाईंचरित' का यह उल्लेख भी कम भ्रमपूर्ण नहीं लगता।

जहाँगीर तथा उस का काशी आगमन

वेणीमाधवदास लिखते हैं—

दोहा—जहाँगीर आयो तहाँ सत्तर संवत बीत।
धन धरती दीबो चहै गहै न गुनि बिपरीत॥ ९७॥

अर्थात् १६७० की समाप्ति पर जहाँगीर काशी आया उस ने गोस्वामी जी को धन धरती देना चाहा किंतु गोस्वामी जी ने उसे अपने सिद्धांत के विपरीत समझ कर ग्रहण नहीं किया।

जहाँगीर ने अपना जीवन वृत्त स्वयं 'तुजुक जहाँगीरी' नाम से लिखा है, उस में कहीं इस घटना की ओर संकेत भी नहीं है। 'स्वयं जहाँगीर के लेख से मालूम होता है कि वह १६६९ से १६७३ तक पूर्व की ओर आया ही नहीं।'[1] अतएव, ऐसी दशा में 'मूल गोसाईंचरित' का यह उल्लेख भी अशुद्ध ज्ञात होता है।

ऊपर हम ने 'मूल गोसाईंचरित' में आने वाले सभी प्रमुख साहित्यिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों तथा उन से संबंध रखने वाली घटनाओं पर एक

---

[1] श्यामसुंदरदास, 'गोस्वामी तुलसीदास,' पृ० ११८।

ऐतिहासिक के दृष्टि-कोण से विचार करने का प्रयत्न किया है। किंतु हम ने लगभग प्रत्येक स्थल पर देखा है कि उस के उल्लेख नितांत भ्रम-पूर्ण हैं। ऐसी दशा में उस में कितनी ऐतिहासिकता होगी इस का अनुमान सहज में किया जा सकता है और उस के कथन की कदाचित् आवश्यकता भी नहीं है।

नोट—यह निबंध हिंदुस्तानी एकेडेमी के तीसरे साहित्य सम्मेलन के अवसर पर पढ़ा गया था। सं०